

३०. देवरतिराज्ञः कथा

नत्वा जिनं जगत्पूज्यं केवलज्ञानलोचनम्। कथा देवरतेर्वच्चि विनितापत्तनेशिनः ॥१॥
 अयोध्या नगरे राजा जातो देवरतिर्महान्। रक्ता नाम्नी महाराज्ञी रूपसौभाग्यशालिनी ॥२॥
 स भूपतिः सदा तस्या-मासक्तः कामलम्पटः। शत्रुभिः पीडितश्चापि राज्यचिन्तां करोति न ॥३॥
 मुक्त्वा धर्मार्थनामानौ पदार्थौ नीतिवर्जितः। भुङ्क्ते भोगान्कुधीर्योत्र स स्याद्दुःखैकभाजनम् ॥४॥
 मंत्रिभिश्चैकदा पुत्रं जयसेनाभिधानकम्। राज्ये धृत्वा तया सार्द्धं देशान्निर्घाटितः प्रभुः ॥५॥
 तदा देवरतिः सोपि रक्तया सह भूपतिः। महादव्यां समायातो धिक्कामं नीतिवर्जितम् ॥६॥
 तत्र क्षुधामहाक्लेशपीडितायाः स्वयोषितः। स्वोरुमांसं सुसंस्कृत्य दत्तवान्मोहवञ्चितः ॥७॥
 तथा तस्यास्तृषाक्रान्तचेतसो मूढमानसः। बाहुरक्तं महौषध्या जलं कृत्वा च सन्ददौ ॥८॥
 यमुनायास्तटं प्राप्य रक्तां धृत्वा तरोस्तले। भोजनं च समानेतुं ग्राममध्ये नृपो गतः ॥९॥

३०. देवरतिराजा की कथा

केवलज्ञान जिनका नेत्र है, उन जग पवित्र जिनभगवान् को नमस्कार कर देवरति नामक राजा का उपाख्यान लिखा जाता है, जो अयोध्या के स्वामी थे ॥१॥

अयोध्या नगरी के राजा देवरति थे। उनकी रानी का नाम रक्ता था। वह बहुत सुन्दरी थी राजा सदा उसी के नाद में लगे रहते थे। वे बड़े विषयी थे। शत्रु बाहर से आकर राज्य पर आक्रमण करते, उसकी भी उन्हें कुछ परवाह नहीं थी। राज्य की क्या दशा है, इसकी उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की। जो धर्म और अर्थ पुरुषार्थ को छोड़कर अनीति से केवल काम का सेवन करते हैं, सदा विषयवासना के ही दास बने रहते हैं, वे नियम में कष्टों को उठाते हैं। देवरति की भी यही दशा हुई। राज्य की ओर से उनकी यह उदासीनता मंत्रियों को बहुत बुरी लगी। उन्होंने राजकाम के सम्हालने की राजा से प्रार्थना की, पर उसका फल कुछ नहीं हुआ। यह देख मंत्रियों ने विचार कर देवरति के पुत्र जयसेन को तो अपना राजा नियुक्त किया और देवरति को उनकी रानी के साथ देश बाहर कर दिया। ऐसे काम को धिक्कार है, जिससे मान-मर्यादा धूल में मिल जाए और अपने को कष्ट सहना पड़े ॥२-५॥

देवरति अयोध्या से निकल कर एक भयानक वन में आए। रानी को भूख ने सताया, पास खाने को एक अन्न का कण तक नहीं। अब वे क्या करें? इधर जैसे-जैसे समय बीतने लगा, रानी भूख से बेचैन होने लगी। रानी की दशा देवरति से नहीं देखी गई और देख भी वे कैसे सकते थे। उसी के लिए तो अपना राजपाट तक उन्होंने छोड़ दिया था। आखिर उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने उसी समय अपनी जाँघ काटकर उसका मांस पकाया और रानी को खिलाकर उसकी भूख शान्त की और प्यास मिटाने के लिए उन्होंने अपनी भुजाओं का खून निकाला और उसे एक औषधि बता कर पिलाया। इसके बाद वे धीरे-धीरे यमुना के किनारे पर आ पहुँचे। देवरति ने रानी को तो एक झाड़ के नीचे बैठाया और आप भोजन सामग्री लेने को पास के एक गाँव में गए ॥६-९॥

सापि तत्र समालोक्य वाटिकासेवनोद्यतम्। वार्यन्त्रं खेटयन्तं च पंगुं सद्गानसंयुतम् ॥१०॥
तस्मिन्नासक्तचित्ताभूद्रक्ता तं प्राह पापिनी। अहो पंगो त्वकं शीघ्रं मामिच्छेति प्रभो स्वयम् ॥११॥
तेनोक्तं पंगुना मुग्धे त्वदीयप्राणनाथतः। अहं चित्ते बिभेमीति महाभटशिरमणेः ॥१२॥
सावोचन्मारयामीति तं प्रियं मा भयं कुरु। दुराचारश्रिता लोके किं न कुर्वन्ति योषितः ॥१३॥
गृहीत्वा भोजनं तत्र समायाते महीपतौ। रोदनं कर्तुमारब्धं तथा कौटिल्यभावतः ॥१४॥
नृपः प्राह प्रिये कस्मात्त्वं करोषीति रोदनम्। सा जगौ देव रक्ताख्या रिक्ताहं पापकर्मतः ॥१५॥

यहाँ एक छोटा-सा पर बहुत ही सुन्दर बगीचा था। उसमें एक कोई अपंग मनुष्य चड़स खींचता हुआ और गा रहा था। उसकी आवाज बड़ी मधुर थीं। इसलिए उसका गाना बहुत मनोहारी और सुनने वालों को प्रिय लगता था। उसके गाने की मधुर आवाज रक्ता रानी के भी कानों से टकराई न जाने उसमें ऐसी कौन-सी मोहक-शक्ति थी, जो रानी को उसने उसी समय मोह लिया और ऐसा मोहा कि उसे अपने निजत्व से भी भुला दिया। रानी सब लाज-शरम छोड़कर उस अपंग के पास गई और उससे अपनी पाप-वासना उसने प्रकट की। वह अपंग कोई ऐसा सुन्दर न था, पर रानी तो उस पर जी जान से न्यौछावर हो गई। सच है— “काम ने देखे जात कुजात।” राजरानी की पाप-वासना सुनकर वह घबराकर रानी से बोला—मैं एक भिखारी और आप राजरानी तब मेरी आपकी जोड़ी कहाँ? और मुझे आपके साथ देखकर क्या राजा साहब जीता छोड़ देंगे? मुझे आपके शूरवीर और तेजस्वी प्रियतम की सूरत देखकर कैपी छूटती है। आप मुझे क्षमा कीजिए। उत्तर में रानी महाशया ने कहा—इसकी तुम चिन्ता न करो। मैं उन्हें तो अभी ही परलोक पहुँचाये देती हूँ। सच है, दुराचारिणी स्त्रियाँ क्या-क्या अनर्थ नहीं कर डालती। ये तो इधर बातें कर रहे थे कि राजा भी इतने में भोजन लेकर आ गए। उन्हें दूर से देखते ही कुलटा रानी ने मायाचारी से रोना आरम्भ किया। राजा उसकी यह दशा देखकर आश्चर्य में आ गए। हाथ के भोजन को एक ओर पटककर वे रानी के पास दौड़े आकर बोले—प्रिये, प्रिये, कहो! जल्दी कहो!! क्या हुआ? क्या किसी ने तुम्हें कुछ कष्ट पहुँचाया? तुम क्यों रो रही हो? तुम्हारा आज अकस्मात् रोना देखकर मेरा सब धैर्य छूटा जाता है। बतलाओ, अपने रोने का कारण, जल्दी बतलाओ? रानी एक लम्बी आह भरकर बोली—प्राणनाथ, आपके रहते मुझे कौन कष्ट पहुँचा सकता है? परन्तु मुझे किसी के कष्ट पहुँचाने से भी जितना दुःख नहीं होता उससे कहीं बढ़कर आज अपनी इस दशा का दुःख है। नाथ, आप जानते हैं आज आपकी जन्मगाँठ का दिन है। पर अत्यन्त दुःख है कि पापी दैव ने आज मुझे इस भिखारिणी की दशा में पहुँचा दिया। मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं। बतलाइए, मैं आज ऐसे उत्सव के दिन आपकी जन्मगाँठ का क्या उत्सव मनाऊँ? सच है नाथ, बिना पुण्य के जीवों को अथाह शोक-सागर में डूब जाना पड़ता है। रानी की प्रेम-भरी बातें सुनकर राजा का गला भर आया, आँखों से आँसू टपक पड़े। उन्होंने बड़े प्रेम से रानी के मुँह को चूमकर कहा—प्रिये, इसके लिए कोई चिन्ता की बात नहीं। कभी

अद्य किं क्रियते प्राप्ते तवायुर्ग्रन्थिवासरे। जन्तोः पुण्यं विना घोरे मज्जनं शोकसागरे ॥१६॥
 इत्याकर्ण्य तदासक्तः संजगाद महीपतिः। किं शोकेन प्रिये सर्वं त्वयैव मम पूर्यते ॥१७॥
 तथाप्याचारमात्रं च करोमीति प्रजल्प्य सा। तंत्रीगुफितपुष्पौघैर्बन्धित्वा स्वपतिं गले ॥१८॥
 यमुनाख्यमहानद्यां क्षिप्त्वा तं दुष्टमानसा। पंगुना सह दुष्कर्म-कुर्वती संस्थिता तदा ॥१९॥
 अथ देवरतिर्भूपः कथंचित्कर्मयोगतः। मंगलाख्यपुरं प्राप्य श्रान्तो नद्याः प्रवाहतः ॥२०॥
 सुप्तस्तत्र बहिर्देशे वृक्षमूले सुखप्रदे। जन्तूनां जैनधर्मे वा महाभ्युदयकारणे ॥२१॥

वह दिन भी आयेगा जिस दिन तुम अपनी कामनाओं को पूरी कर सकोगी और न भी आए तो क्या? जबकि तुम जैसी भाग्यशालिनी जिसकी प्रिया है उसे इस बात की कुछ परवाह भी नहीं है। जिसने अपनी प्रिया की सेवा के लिए अपना राजपाट तक तुच्छ समझा उसे ऐसी छोटी बातों का दुःख नहीं होता। उसे यदि दुःख होता है तो अपनी प्यारी को दुःखी देखकर प्रिये, इस शोक को छोड़ो। मेरे लिए तो तुम ही सब कुछ हो। हाय! ऐसे निष्कपट प्रेम का बदला जान लेकर दिया जायेगा, इस बात की खबर या सम्भावना बेचारे रतिदेव को स्वप्न में भी नहीं थी। देव की विचित्र गति है ॥१०-१७॥

राजा के इस हार्दिक और सच्चे प्रेम का पापिनी रानी के पत्थर के हृदय पर जरा भी असर न हुआ। वह ऊपर से प्रेम बताकर बोली-अस्तु, नाथ! बात जो भी हो उसके लिए पछताना तो व्यर्थ ही है। पर तब भी मैं अपने चित्त को सन्तोषित करने को इस पवित्र फूल की माला द्वारा नाम मात्र के लिए कुछ करती हूँ। यह कहकर रानी ने अपने हाथ में जो फूल गूँथने की रस्सी थी, उससे राजा को बाँध दिया। बेचारा वह तब भी यही समझा कि रानी कोई जन्मगाँठ की विधि करती होगी और यही समझ उसने खूब मजबूत बाँधे जाने पर भी चूँ तक नहीं किया। जब राजा बाँध दिया गया और उसके प्राण निकलने का कोई भय नहीं रहा तब रानी ने इशारे से उस अपंग को बुलाया और उसकी सहायता से पास ही बहने वाली यमुना नदी के किनारे पर ले जाकर बड़े ऊँचे से राजा को नदी में ढकेल दिया और आप अब अपने दूसरे प्रियतम के पास रहकर अपनी नीच मनोवृत्तियों को सन्तुष्ट करने लगी। नीचता और कुलटापन की हद हो गई ॥१८-१९॥

पुण्य का जब उदय होता है तब कोई कितना ही कष्ट क्यों न दे या कैसी ही भयंकर आपत्ति का क्यों न सामना करना पड़े। पर तब भी वह रक्षा पा जाता है। देवरति के भी कोई ऐसा पुण्ययोग था, जिससे रानी के नदी में डाल देने पर भी वह बच गया। कोई गहरी चोट उसके नहीं आई वह नदी से निकलकर आगे बढ़ा। धीरे-धीरे वह मंगलपुर नामक शहर के निकट आ पहुँचा। देवरति कई दिनों तक बराबर चलते रहने से बहुत थक गया था, उसे बीच में कोई अच्छी जगह विश्राम करने को नहीं मिली थी, इसलिए अपनी थकावट मिटाने के लिए वह एक छायादार वृक्ष के नीचे सो गया। मानों जैसे वह सुख देने वाले जैनधर्म की छत्रछाया में ही सोया हो ॥२०-२१॥

तत्र श्रीवर्द्धनो राजा विपुत्रो मृत्युमाप्तवान्। मंत्रिभिर्भणितेनोच्चैर्विधिना पट्टहस्तिना ॥२२॥
 पूर्णकुंभेन संस्नाप्य स भूपः पुण्ययोगतः। नीत्वा पुरं तदा राज्ये स्थापितः सन्महोत्सवैः ॥२३॥
 पूर्वपुण्येन जन्तूनामापदा सम्पदायते। तस्माच्छ्रीमज्जिनेन्द्रोक्तं पुण्यं कुर्वन्तु भो बुधाः ॥२४॥
 पुण्यं श्रीजिनपादार्चा पुण्यं सत्पात्रदानतः। पुण्यं पुण्यव्रतादुक्तं पुण्यं सत्प्रोषधादिभिः ॥२५॥
 तदा देवरतिर्भूपः स्थितो राज्ये सुखप्रदे। गुणोपेतस्त्रियश्चापि मुखाब्जं नैव पश्यति ॥२६॥
 दुर्जनैर्विचितो धत्ते विश्वासं नैव सज्जने। संतप्तपयसा दग्धो भुङ्क्ते फूत्कृत्य सद्बुद्धि ॥२७॥
 तथा दानं ददात्युच्चैः सर्वेभ्योसौ यशस्करम्। पंगूनां न ददात्येव भूपतिः किञ्चिदप्यथः ॥२८॥
 सा रक्ता पापिनी पंगुं तं कृत्वा चोल्लके तदा। अयं मे प्राणनाथोस्ति दत्तस्तातादिभिस्तराम् ॥२९॥

मंगलपुर का राजा श्रीवर्धन था उसके कोई सन्तान न थी। इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। मंत्रियों ने यह विचार कर, कि पट्टहाथी को एक जलभरा घड़ा दिया जाकर वह छोड़ा गया और वह जिसका अभिषेक करे वही अपना राजा होगा, एक हाथी को छोड़ा। दैव की विचित्र लीला है, जो राजा है, उसे वह रंक बना देता है और जो रंक है, उसे संसार का चक्रवर्ती सम्राट् बना देता है। देवरति का दैव जब उसके विपरीत हुआ तब तो उसे उसने पथ-पथ का भिखारी बनाया और अनुकूल होने पर सब राज-योग मिला दिया। देवरति भर नींद में वृक्ष के नीचे सो रहा था। हाथी उधर ही पहुँचा और देवरति का उसने अभिषेक कर दिया। देवरति बड़े आनन्द-उत्साह के साथ शहर में लाया जाकर राज्यसिंहासन पर बैठाया गया। सच है, पुण्य जब पल्ले में होता है तब आपत्तियाँ भी सुख के रूप में परिणत हो जाती हैं। इसलिए सुख की चाह करने वालों को भगवान् के उपदेश किए हुए मार्ग द्वारा पुण्य-कर्म करना चाहिए। भगवान् की पूजा, पात्रों को दान, व्रत, उपवास ये सब पुण्य-कर्म हैं। इन्हें सदा करते रहना चाहिए ॥२२-२४॥

देवरति फिर राजा हो गए। पर पहले और अब के राजापन में बहुत फर्क है। अब वे स्वयं सब राज-काज देखा करते हैं। पहले से अब उनकी परिणति में भी बहुत भेद पड़ गया है। जो बातें पहले उन्हें बहुत प्यारी थी और जिनके लिए उन्होंने राज्य-भ्रष्ट होना तक स्वीकार कर लिया था, अब वे बातें उन्हें अत्यन्त अप्रिय हो उठीं। अब वे स्त्री नाम से घृणा करते हैं। वे एक कुल कलंकिनी का बदला सारे संसार की स्त्रियों को कुल कलंकिनी कहकर लेते हैं। वे अब गुणवती स्त्रियों का भी मुँह देखना पसन्द नहीं करते। सच है, जो एक बार दुर्जनों द्वारा ठगा जाता है वह फिर अच्छे पुरुषों के साथ भी कैसा ही व्यवहार करने लगता है। गरम दूध का जला हुआ छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है। देवरति की भी अब विपरीत गति है। अब वे स्त्रियों को नहीं चाहते। वे सबको दान करते हैं, पर जो अपंग, लूला, लँगड़ा होता है उसे वे एक अन्न का कण तक देना पाप समझते हैं ॥२५-२८॥

इधर रक्ता रानी ने बहुत दिनों तक तो वहीं रहकर मजामौज मारी और बाद में वह उस अपंग को एक टोकरे में रखकर देश-विदेश घूमने लगी। उस टोकरे को सिर पर रखे हुए वह जहाँ पहुँचती

इत्याद्यसत्यवाग्जालै-लोकानामग्रतो मुदा। स्वसतीत्वं प्रकाशयोच्चैः पर्यटन्ती पुरादिषु ॥३०॥
 भिक्षां सर्वत्र कुर्वाणा मंगलाख्यपुरं ययौ। तत्र तां वीक्ष्य पौरास्ते प्रापुराश्चर्यकं महत् ॥३१॥
 येन स्त्रीणां चरित्रेण ब्रह्माद्या वंचिता भुवि। का कथा तत्र लोकानां वञ्चने मुग्धतेचसाम् ॥३२॥
 राजद्वारे तथा प्राप्तौ तौ गायन्तौ मनोहरम्। प्रतीहारस्तदा प्राह भूपतिं परमादरात् ॥३३॥
 अहो स्वामिन्महाश्चर्यं सिंहद्वारे कलस्वनौ। सतीपंगू समायातौ दृष्टव्यौ धार्मिकैर्जनैः ॥३४॥
 इत्याकर्ण्य प्रभुः सोपि जनानामाग्रहेण च। अन्तःपटं विधायोच्चैस्तौ समाहूय लम्पटौ ॥३५॥
 प्रियावाक्यं समाकर्ण्य ज्ञात्वा तां च स्वकामिनीम्। अहो सती समायाता मया ज्ञातेयमद्भुता ॥३६॥
 इत्युक्त्वा तां प्रचार्योच्चैः पापिनीं शीलवर्जिताम्। त्रिधा वैराग्यसम्पन्नः सुधीर्देवरतः प्रभुः ॥३७॥
 तस्यैव जयसेनाख्यस्वपुत्रस्य महोत्सवैः। राज्यलक्ष्मीं समर्प्यांशु जिनाभ्यर्च्य भक्तितः ॥३८॥
 दीक्षां यमधराचार्यपाश्वरे शर्मशतप्रदाम्। समादाय मुनिर्भूत्वा पूतात्मा भव्यतारकः ॥३९॥
 कृत्वा तपो जिनेन्द्रोक्तं लोकद्वयसुखप्रदम्। स्वर्गे देवोभवत्काले महान्नानर्द्धिमण्डितः ॥४०॥

अपने को महासती जाहिर करती और कहती कि माता-पिता ने जिसके हाथ मुझे सौंपा वही मेरा प्राणनाथ है, देवता है। उसकी इस ठगई से बेचारे लोग ठगे जाकर उसे खूब रुपया पैसा देते। इसी तरह भिक्षा-वृत्ति करती-करती रक्ता रानी मंगलपुर में आ निकली। वहाँ भी लोगों को उसके सतीत्व पर बड़ी श्रद्धा हो गई। हाँ सच है, जिन स्त्रियों ने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव सरीखे देवताओं को भी ठग लिया, तब साधारण लोग उनके जाल में फँस जायें इसका आश्चर्य क्या? ॥२९-३२॥

एक दिन ये दोनों गाते राजमहल के सामने आए। इनके सुन्दर गाने को सुनकर ड्यूदीवान् ने राजा से प्रार्थना की-महाराज, सिंहद्वार पर एक सती अपने अपंग पति को टोकरे में रखकर और उसे सिर पर उठाये खड़ी है। वे दोनों बड़ा ही सुन्दर गाना जानते हैं। महाराज का वे दर्शन करना चाहते हैं। आज्ञा हो तो मैं उन्हें भीतर आने दूँ। इसके साथ ही सभा में बैठे हुए और प्रतिष्ठित कर्मचारियों ने भी उनके देखने की इच्छा जाहिर की। राजा ने एक परदा डलवा कर उन्हें बुलवाने की आज्ञा की ॥३३-३५॥

सती सिर पर टोकरा लिए भीतर आई, उसने कुछ गाया। उसके गानों को सुनकर सब मुग्ध हो गए और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। राजा ने उसकी आवाज सुनकर उसे पहचान लिया। उसने परदा हटवाकर कहा-अहा, सचमुच में यह महासती है। इसका सतीत्व मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। इसके बाद ही उन्होंने अपनी सारी कथा सभा में प्रकट कर दी। लोग सुनकर दाँतों तले अँगुली दबा गए। उसी समय महासती रक्ता को शहर बाहर करने का हुक्म हुआ। देवरति को स्त्रियों का चरित देखकर बड़ा वैराग्य हुआ। उन्होंने अपने पहले पुत्र जयसेन को अयोध्या से बुलवाया और उसे इस राज्य का भी मालिक बनाकर आप श्रीयमधराचार्य के पास जिनदीक्षा के लिए गए, जो कि अनेक सुखों की देने वाली हैं। साधु होकर देवरति ने खूब तपश्चर्या की, बहुतों को कल्याण का मार्ग बतलाया और अन्त में समाधि से शरीर त्याग कर वे स्वर्ग में अनेक ऋद्धियों के धारक देव हुए ॥३६-४०॥

दृष्ट्वा स्त्रीचरितं समस्तजगतां निन्द्यं सदा वञ्चकं ज्ञात्वा संसृतिदेहभोगमखिलं शक्रस्य चापोपमम्।
नाम्ना देवरतिप्रभुर्जिनपतेर्दीक्षां समादाय यः संजातो मुनिसत्तमो गुणनिधिर्नित्यं स मेऽशं क्रियात् ॥४१॥
इति कथाकोशे देवरतिराज्ञः कथा समाप्ता।

३१. गोपवती-कथा

सर्वसौख्यप्रदं नत्वा श्रीजिनं जगदर्चितम्। वैराग्याय सतां वक्ष्ये वृत्तं गोपवतीश्रितम् ॥१॥
पलासग्रामवास्तव्यो नाम्ना सिंहबलो नरः। भार्या गोपवती तस्य संजाता दुष्टमानसा ॥२॥
एकदा पद्मिनीखेटग्रामं गत्वा निजेच्छया। प्रच्छन्नं स्वस्त्रियो गाढं सुधीः सिंहबलो मुदा ॥३॥
तत्रस्थसिंहसेनाख्य ग्रामकूटस्य पुत्रिकाम्। सुभद्रां रूपलावण्यमण्डितां परिणीतवान् ॥४॥
तच्छ्रुत्वा पापिनी सापि महाकोपाग्निकम्पिता। गत्वा गोपवती तत्र तद्गृहं सम्प्रविश्य च ॥५॥
मातृकाग्रे प्रसुप्तायाः सुभद्रायाश्च मस्तकम्। गृहीत्वा गृहमायाता सपत्नी पापकारिणी ॥६॥
प्रातःकाले सुभद्राया रुण्डं दृष्ट्वा भयानकम्। सोपि सिंहबलो दुःखी समायातो निजं गृहम् ॥७॥

रक्तारानी सरीखी कुलटा स्त्रियों का घृणित चरित देखकर और संसार, शरीर, भोगादिकों को इन्द्र-धनुष की तरह क्षणिक समझकर जिन देवरति राजा ने जिनदीक्षा ग्रहण कर मुनिपद स्वीकार किया, वे गुणों के खजाने मुनिराज मुझे मोक्ष लक्ष्मी का स्वामी बनावें ॥४१॥

३१. गोपवती की कथा

संसार द्वारा वन्दना-स्तुति किए गए और सब सुखों को देने वाले जिनभगवान् को नमस्कार कर गोपवती की कथा लिखी जाती है, जिसे सुनकर हृदय में वैराग्य भावना जगती है ॥१॥

पलासगाँव में सिंहबल नाम का एक साधारण गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम गोपवती था। गोपवती बड़े दुष्ट स्वभाव की स्त्री थी। उसकी दिन-रात की खटपट से बेचारा सिंहबल तबाह हो गया। उसे पलभर के लिए भी गोपवती के द्वारा कभी सुख नहीं मिला ॥२॥

गोपवती से तंग आकर एक दिन सिंहबल पास ही के एक पद्मिनीखेट नाम के गाँव में गया। वहाँ उसने अपनी पहली स्त्री को बिना कुछ पूछे-ताछे गुप्त रीति से सिंहसेन चौधरी की सुभद्रा नाम की लड़की से, जो कि बहुत ही खूबसूरत थी, ब्याह कर लिया। किसी तरह यह बात गोपवती को मालूम हो गई, सुनते ही क्रोध के मारे वह आग-बबूला हो गई उससे सिंहबल का यह अपराध नहीं सहा गया। वह उसे उसके अपराध की योग्य सजा देने की फिराक में लग गई ॥३-५॥

एक दिन शाम के कोई सात बजे होंगे कि गोपवती अपने घर से निकलकर पद्मिनीखेट गई। उस समय कोई ग्यारह बज गए होंगे। गोपवती सीधी सिंहसेन के घर पहुँची। घर के लोगों ने समझा कि कोई आवश्यक काम के लिए यहाँ आई होगी, सबेरा होने पर विशेष पूछ-ताछ करेंगे। यह विचार कर वे सब सो गए। गोपवती भी तब लोगों को दिखाने के लिए सो गई पर जब सबको नींद आ गई, तब आप चुपके से उठी और जहाँ अपनी माँ के पास बेचारी सुभद्रा सोई थी, वहाँ पहुँचकर उस